IJGMRA | ISSN (online): 3107-6483
April-June 2026 | Vol. 2 | Issue 1

हिंदी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श: अकेलेपन और उपेक्षा का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० कृष्ण कुमार पाल*

*असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, का. सु. साकेत पी.जी. कॉलेज, अयोध्या, उत्तर प्रदेश

DOI: doi.org/10.5281/zenodo.21134742

Accepted on: 26/06/2026 Published on: 30/06/2026

सारांश:

औद्योगीकरण, महानगरीय पूँजीवाद और एकल परिवारों के उदय ने भारतीय समाज की सुदृढ़ संयुक्त पारिवारिक संरचना को गहराई से खंडित किया है। इस संरचनात्मक विघटन की सर्वाधिक मार वृद्ध आबादी पर पड़ी है जिसे वर्तमान उपभोक्तावादी समाज उत्पादन प्रणाली से बाहर होने के कारण एक अनुपयोगी और निष्क्रिय इकाई मानने लगा है। प्रस्तुत शोध-पत्र समकालीन हिंदी उपन्यासों—विशेष रूप से चित्रा मुद्गल के 'गिलिगड्डु,' गोविंद मिश्र के 'शाम की झिलमिल' और डॉ. सूरज सिंह नेगी के उपन्यासों 'रिश्तों की आँच', 'वसीयत' और 'नियति चक्र' के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में वृद्ध विमर्श उनके अकेलेपन, उपेक्षा और अस्तित्वपरक संकट का गहन मूल्यांकन करता है। यह अध्ययन दर्शाता है कि किस प्रकार वर्तमान पूँजीवादी एवं बाजारीकृत मनोवृत्ति मानवीय संवेदनाओं को अर्थ-केंद्रित लाभ-हानि की तुला पर तौलती है जिससे घर का बुजुर्ग हाशिए पर धकेल दिया जाता है।

बीज शब्द: *वृद्ध विमर्श, उपभोक्तावाद, एकल परिवार, अकेलापन, समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य।*

प्रस्तावना:

उत्तर-आधुनिक भारतीय विमर्शों के दौर में वृद्ध विमर्श एक अनिवार्य और गंभीर मानवीय व सामाजिक सरोकार के रूप में स्थापित हुआ है। वृद्धावस्था जीवन चक्र की अंतिम तार्किक अवस्था है जिसे समाजशास्त्र में जैविक एवं सामाजिक संक्रमण काल के रूप में देखा जाता है। पारंपरिक भारतीय सामाजिक ताने-बाने में वृद्धजन सत्ता, ज्ञान, अनुभव और नैतिकता के मुख्य केंद्र हुआ करते थे। संयुक्त परिवार व्यवस्था में उनकी भूमिका केवल नीति-निर्धारक की ही नहीं बल्कि नई पीढ़ी को संस्कारित करने वाले मार्गदर्शक की भी थी। किंतु, आधुनिकीकरण और पाश्चात्य सांस्कृतिक आक्रामकता के प्रभाव ने सामाजिक संबंधों के इस पूरे पिरामिड को उलट दिया है। समकालीन समाजशास्त्रीय चिंतक कार्ल मार्क्स के आर्थिक निर्धारणवाद और मैक्स वेबर के तार्किक-विधिक क्रिया के सिद्धांतों के आलोक में देखें तो आज के समाज का ढाँचा अत्यधिक उपयोगितावादी हो चुका है। यहाँ किसी भी व्यक्ति का सामाजिक मूल्य इस बात से तय होता है कि वह कितना आर्थिक उत्पादन कर सकता है। चूँकि, वृद्ध व्यक्ति सेवानिवृत्त हो चुका होता है और उसकी शारीरिक उत्पादकता सीमित हो

जाती है इसलिए सामाजिक विनिमय सिद्धांत के अनुसार परिवार और समाज उसे लागत अधिक और प्रतिफल कम मानने लगते हैं। हिंदी कथा साहित्य ने इस समाजशास्त्रीय परिवर्तन को बेहद सूक्ष्मता से निरखा है। जहाँ स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासों में बुढ़ापा पारिवारिक आदर के साथ नेपथ्य में जाता था, वहीं समकालीन उपन्यासों में यह एक भयंकर त्रासदी, उपेक्षा, घरेलू हिंसा और मानसिक एकांतवास के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है।

पारिवारिक विघटन

वृद्धों की वर्तमान दयनीय स्थिति के मूल में समाज की आर्थिक संरचना में आया परिवर्तन है। कृषि प्रधान ग्रामीण अर्थव्यवस्था जहाँ संयुक्त परिवार की धुरी थी, वहीं औद्योगिक-महानगरीय अर्थव्यवस्था एकल परिवार की अनिवार्यता पर टिकी है। महानगरीय जीवन की अपनी विवशताएँ हैं—जैसे फ्लैट संस्कृति में कम जगह होना, अत्यधिक महँगाई और निजता का अतिरेकपूर्ण आग्रह। इस सामाजिक विस्थापन पर गहरा प्रकाश डालते हुए डॉ. आरिफ महात अपनी पुस्तक 'हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श' में रेखांकित करते हैं- "आधुनिकीकरण की अंधी दौड़ में सामूहिक परिवार बिखरने लगा... मनुष्य विकास के पथ पर जैसे-जैसे अग्रसर होता गया, परिवार से दूर होता गया और घर के बुजुर्ग का स्थान घर के केंद्र से निकलकर घर के कोने और फिर घर के बाहर होता गया।" (महात, 2022, पृ. 53)

उपभोक्तावाद ने मनुष्य की चेतना को 'इस्तेमाल करो और फेंको' की संस्कृति में ढाल दिया है। यह मानसिकता केवल वस्तुओं तक सीमित नहीं रही बल्कि जीवित मानवीय संबंधों पर भी लागू होने लगी है। संतानों की महत्वाकांक्षाएँ इतनी असीमित और आत्मकेंद्रित हो गई हैं कि उनके जीवन में अपने माता-पिता के अतीत, उनकी बीमारियों और उनके सीधे-सरल संवाद के लिए कोई 'स्थान' शेष नहीं बचा है। वृद्धों को यह लगने लगता है कि वे अपनी ही कमाई से बनाये गए मकान में एक अनचाहे किरायेदार की तरह जी रहे हैं।

प्रमुख हिंदी उपन्यास एवं वृद्ध जीवन-

चित्रा मुद्गल का 'गिलिगड्डु' एवं महानगरीय 'गैर-मौजूदगी' की त्रासदी

चित्रा मुद्गल का लघु उपन्यास 'गिलिगड्डु' आधुनिक महानगरीय बोध और बुजुर्गों की अस्मिता के संकट का एक बेजोड़ दस्तावेज है। इस उपन्यास की कथावस्तु 13 दिनों के कालखंड में फैले दो वृद्धों—रिटायर्ड सिविल इंजीनियर बाबू जसवंत सिंह और रिटायर्ड कर्नल विष्णु नारायण स्वामी के जीवन के इर्द-गिर्द बुनी गई है। दोनों ही पात्र आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं, उन्हें अच्छी पेंशन मिलती है फिर भी वे भावनात्मक दरिद्रता और पारिवारिक तिरस्कार के शिकार हैं। लेखिका ने उपन्यास में 'गैर-मौजूदगी' की अवधारणा को सामने रखा है। घर के भीतर बुजुर्ग को इस कदर नजरअंदाज किया जाता है जैसे वे भौतिक रूप से वहाँ हैं ही नहीं। जसवंत सिंह का बेटा और बहू अपनी आधुनिक जीवनशैली में इतने व्यस्त हैं कि

उनके पास जसवंत सिंह से बात करने की फुर्सत नहीं है। कर्नल स्वामी जिन्होंने सेना में गौरवमयी जीवन जिया, बुढ़ापे में संतानों की उपेक्षा के कारण नितांत अकेलेपन में जीने को विवश हैं और अंततः अत्यंत कारुणिक स्थिति में मृत्यु को प्राप्त होते हैं। पार्वतीबाई चौगुले इस स्थिति की समीक्षा करते हुए लिखती हैं- "अनुपयोगी होने के बाद हमने उन्हें ढोना जरूरी नहीं समझा... लेखिका ने अपने उपन्यास में वृद्धों के जीवन को केंद्र में रखा है जिसे उन्होंने 'गैर मौजूदगी' का नाम दिया है। यह उपन्यास हमारे तथाकथित सभ्य जीवन की पोल खोलता है।" (चौगुले, 2020, पृ.1)

चित्रा मुद्गल यहाँ यह समाजशास्त्रीय यथार्थ उद्घाटित करती हैं कि बुढ़ापे की समस्या केवल आर्थिक विपन्नता नहीं है बल्कि 'भावनात्मक अलगाव' है। कर्नल स्वामी और जसवंत सिंह का मयूर विहार की पुलिया पर मिलना और एक-दूसरे के दुःख साझा करना यह दर्शाता है कि इस समाज में वृद्ध ही वृद्ध का सच्चा सहारा रह गया है।

गोविंद मिश्र का 'शाम की झिलमिल' एवं जिजीविषा और एकाकीपन का द्वंद्व

गोविंद मिश्र का उपन्यास 'शाम की झिलमिल' वृद्ध विमर्श के एक अलग मनोवैज्ञानिक और सामाजिक धरातल को छूता है। यह उपन्यास केवल बुजुर्गों की लाचारी नहीं दिखाता बल्कि ढलती उम्र में जीने की उद्दाम इच्छा और अकेलेपन के बीच होने वाली टकराहट को भी रूपायित करता है। उपन्यास का मुख्य नायक जीवन के उस पड़ाव पर खड़ा है जहाँ अतीत बहुत विशाल है और भविष्य धुंधला। समाजशास्त्र में इसे 'भूमिका शून्यता' कहा जाता है जहाँ व्यक्ति के पास निभाने के लिए कोई सामाजिक भूमिका शेष नहीं बचती। उपन्यास का मूल पाठ इस अस्तित्ववादी संकट को प्रकट करता है- "जिस रास्ते से यहाँ तक आया, वह आगे जाता नहीं दिखता... जीवन में जो हो सकता था हो लिया प्रेम, नौकरी, तरक्की, धनोपार्जन, गृहस्थी... थोड़ा दूर चले तो बोर्ड लगा दिखा 'आगे रास्ता बंद है' तो अब किधर?" (मिश्र, 2017, पृ. 11)

गोविंद मिश्र दिखाते हैं कि कैसे समाज बुजुर्गों को एक 'जीवित जड़' मान लेता है और उनसे अपेक्षा करता है कि वे बिना किसी इच्छा, कामना या विरोध के कोने में पड़े रहें। किंतु, नायक के भीतर की जिजीविषा इस सामाजिक थोपेपन का विरोध करती है। अविनाश मिश्र इस उपन्यास की विवेचना करते हुए लिखते हैं कि- "बुढ़ापे में अकेले हो जाने पर, फिर जी भर जी लेने की उद्दाम इच्छा और उसे साकार करने के प्रयत्न ही इस उपन्यास की आत्मा हैं।"(मिश्र, 2018, पृ. 2) यह उपन्यास स्पष्ट करता है कि समाज वृद्धों के अनुभवों को संचित करने में पूरी तरह विफल रहा है।

डॉ. सूरज सिंह नेगी के उपन्यास: वसीयत, नियति और नैतिक पतन

डॉ. सूरज सिंह नेगी के उपन्यास 'रिश्तों की आँच', 'वसीयत' और 'नियति चक्र' ग्रामीण और अर्ध-शहरी मध्यमवर्गीय परिवारों में बुजुर्गों के साथ होने वाले क्रूर व्यवहार का नग्न यथार्थ प्रस्तुत करते हैं। 'वसीयत' उपन्यास में यह

समाजशास्त्रीय कटु सत्य दिखाया गया है कि आधुनिक संतानों के लिए माता-पिता केवल एक 'आर्थिक संसाधन' हैं। जबतक वृद्ध के पास संपत्ति, मकान या पेंशन का नियंत्रण रहता है, तबतक परिवार में एक छद्म सम्मान का नाटक रचा जाता है। जैसे ही वसीयत संतानों के नाम हस्तांतरित होती है, आदर का वह मुखौटा उतर जाता है। इस प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए शोधकर्ता कुलदीप कुमार लिखते हैं- "जिन वृद्धों ने अपनी संतानों को बनाने और सँवारने में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया वे आज नितांत अकेले, निराश, हताश, अवसाद ग्रस्त और उपेक्षित जीवन जीने को विवश हैं... यहाँ बेटा ही पिता को उनके ही घर से बेघर कर देता है।" (कुमार, 2024, पृ. 33) नेगी के उपन्यासों में वृद्ध पात्रों का यह निष्कासन भारतीय समाज के तेजी से गिरते नैतिक और सांस्कृतिक ग्राफ़ को दर्शाता है। यह केवल एक पारिवारिक समस्या नहीं है बल्कि एक व्यापक सामाजिक विसंगति है जहाँ मूल्य पूरी तरह से अर्थ-सापेक्ष हो गए हैं।

अकेलेपन और उपेक्षा का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

महाकाव्यात्मक विस्तीर्णता के साथ यदि हम इन उपन्यासों का समेकित समाजशास्त्रीय वर्गीकरण करें तो वृद्धों की उपेक्षा के निम्नलिखित मुख्य प्रतिमान उभरते हैं-

1.संरचनात्मक अलगाव:

आधुनिक परिवारों में वृद्ध शारीरिक रूप से तो परिवार के साथ रहते हैं लेकिन सामाजिक रूप से वे पूरी तरह अलग-थलग होते हैं।

2. संवादहीनता:

नई पीढ़ी मोबाइल और सोशल मीडिया के आभासी संसार में आकंठ डूबी है। बुजुर्गों के पास बैठने, उनकी स्मृतियों को सुनने या उनसे सामान्य बातचीत करने के लिए भी बच्चों के पास समय नहीं है। यह संवादहीनता वृद्धों को एक गहरे मानसिक अवसाद की ओर धकेलती है।

3. मनोवैज्ञानिक शून्यता:

परिवार के किसी भी महत्वपूर्ण निर्णय, जैसे- संपत्ति की खरीद, बच्चों की शिक्षा, या विवाह में वृद्धों की राय को 'पुराने जमाने की सोच' कहकर खारिज कर दिया जाता है। यह उनके आत्मसम्मान पर सबसे गहरी चोट होती है।

4. आर्थिक एवं शारीरिक निर्भरता:

वृद्धावस्था के साथ आने वाली शारीरिक बीमारियाँ और उन पर होने वाला खर्च संतानों को अपनी आर्थिक उन्नति में बाधा प्रतीत होता है। दवाइयों की माँग करने पर वृद्धों को जो हीनता और तिरस्कार सहना पड़ता है वह उन्हें असमय मृत्यु की ओर ले जाता है।

आधुनिकता एवं विमर्श के बिंदु-

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त 'वृद्ध विमर्श' महज़ एक व्यक्तिगत आयु का रोना नहीं है बल्कि यह हमारे समूचे सामाजिक ढाँचे के अमानवीयकरण का जीवंत प्रतिवाद है। चित्रा मुद्गल, गोविंद मिश्र और सूरज सिंह नेगी जैसे कथाकारों ने वृद्धों के बहाने उत्तर-आधुनिक समाज की उस स्वार्थी, संवेदनहीन और आत्मकेंद्रित मानसिकता को बेनकाब किया है जो केवल भौतिक विकास को ही सर्वोपरि मानती है।

समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से इस विकराल होती समस्या का समाधान केवल सरकारी पेंशन योजनाओं या वृद्धाश्रमों के निर्माण में नहीं है। वृद्धाश्रम सामाजिक अलगाव को वैधानिक स्वीकृति देने जैसा है। इसका वास्तविक समाधान 'अंतर-पीढ़ीगत एकजुटता' में खोजा जाना चाहिए। युवा पीढ़ी को यह समझाना होगा कि वृद्धावस्था कोई संक्रामक रोग या सामाजिक बोझ नहीं है बल्कि अनुभवों का वह महासागर है जिससे समाज दिशा प्राप्त करता है। जबतक हम उपयोगितावादी दृष्टिकोण को बदलकर 'भावनात्मक सह-अस्तित्व' के प्रतिमान को पुनर्जीवित नहीं करेंगे, तबतक वृद्धों का यह अकेलापन और उपेक्षा दूर नहीं हो सकती है। हिंदी उपन्यास इस सामाजिक चेतना को जगाने में एक मार्गदर्शक की भूमिका निभा रहे हैं।

उपसंहार-

प्रस्तुत शोध-पत्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी उपन्यासों में चित्रित 'वृद्ध विमर्श' केवल ढलती उम्र की शारीरिक विवशताओं का आख्यान नहीं है। बल्कि, यह उत्तर-आधुनिकीकरण, बेलगाम उपभोक्तावाद और एकल परिवार व्यवस्था के कारण उपजे एक गंभीर मानवीय, सामाजिक और अस्तित्वपरक संकट का जीवंत प्रतिवाद है। चित्रा मुद्गल के गिलिगड्डु, गोविंद मिश्र के शाम की झिलमिल और डॉ. सूरज सिंह नेगी के वसीयत जैसे उपन्यासों का पाठ्य-मूल्यांकन यह दर्शाता है कि समकालीन समाज संवेदनशीलता के स्तर पर कितना दरिद्र हो चुका है। आर्थिक लाभ-हानि की क्रूर तुला पर मानवीय रिश्तों को तौलने की बाजारवादी मनोवृत्ति ने घर के बुजुर्ग को सत्ता के केंद्र से हटाकर हाशिए के कोने में धकेल दिया है।

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, बल्कि उसकी सोई हुई चेतना को झकझोरने वाला माध्यम भी है। इन कथाकारों ने कर्नल स्वामी, बाबू जसवंत सिंह और अन्य वृद्ध पात्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त उस संवादहीनता और गैर-मौजूदगी के यथार्थ को उघाड़ा है जो बुजुर्गों को अपने ही घर में जीवित लाश की तरह जीने पर विवश करती है। समाजशास्त्र के सिद्धांतों के आलोक में, जबतक समाज किसी व्यक्ति को उसकी आर्थिक उत्पादकता से आँकता रहेगा तबतक वृद्धों का यह अलगाव और मनोवैज्ञानिक शून्यता समाप्त नहीं हो सकती है। इस विकराल सामाजिक समस्या का समाधान केवल संस्थागत स्तर पर वृद्धाश्रमों की बाढ़ ला देने या कानूनी रूप से भरण-पोषण कानून बना देने मात्र से संभव नहीं है। कानून

आचरण बदल सकता है, संवेदना नहीं। इसका वास्तविक और दीर्घकालिक समाधान समाजशास्त्रीय प्रतिमान के अंतर्गत 'अंतर-पीढ़ीगत एकजुटता और सामंजस्य' की पुनर्स्थापना में निहित है। युवा पीढ़ी को अपनी आत्मकेंद्रित महत्वाकांक्षाओं से बाहर निकलकर यह स्वीकार करना होगा कि बुजुर्ग समाज का अनुपयोगी कचरा नहीं, बल्कि जीवन-अनुभवों और सांस्कृतिक मूल्यों की वह अमूल्य धरोहर हैं जिसके बिना कोई भी समाज अपनी जड़ों से कटकर बिखर सकता है।

इस शोध-पत्र से स्पष्ट होता है कि समकालीन हिंदी कथा साहित्य ने वृद्ध जीवन की त्रासदी को केवल एक करुणाजनक रूप में प्रस्तुत नहीं किया बल्कि इसके पीछे सक्रिय सामाजिक-आर्थिक और संरचनात्मक कारणों की गहरी जाँच की है। अंततः, बुजुर्गों को परिवार के भीतर उनका खोया हुआ सम्मान, आत्मीयता और भावनात्मक सुरक्षा लौटाना ही इस विमर्श की सार्थकता है। समकालीन हिंदी कथा साहित्य इस दिशा में एक सशक्त वैचारिक हस्तक्षेप उपस्थित करता है जो समाज को आत्मनिरीक्षण हेतु विवश करता है।

संदर्भ:

1. अग्रवाल, डॉ. प्रीति. (2020). समकालीन हिंदी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श, इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ ह्यूमेनिटीज एंड सोशल साइंसेज, खंड 6, अंक 2, पृ सं.-11–15.
2. कुमार, कुलदीप. (2024). डॉ. सूरज सिंह नेगी के हिंदी उपन्यास : वृद्ध विमर्श के संदर्भ में, आलोचना शोध पत्रिका, अंक 35, पृ सं.-33–37.
3. मिश्र, अविनाश. (2018). परख : वृद्धत्व की विवेचनाएं, अपनी माटी ई-पत्रिका, अंक जनवरी 2018, पृ सं.-1-3.
4. मिश्र, गोविंद. (2017). शाम की झिलमिल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ सं.-11-45.
5. मुद्गल, चित्रा. (2014). गिलिगड्डु. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ सं.-50-85.
6. महात, डॉ. आरिफ. (2022). हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श, विवेकानंद कॉलेज रिसर्च पब्लिकेशन, कोल्हापुर, पृ सं.-53–56.
7. चौगुले, पार्वतीबाई. (2020). गिलिगडु उपन्यास में चित्रित वृद्ध जीवन की त्रासदी, अपनी माटी पीयर-रिव्यूड जर्नल, अंक 32, पृ सं.-1-4.
8. शर्मा, डॉ. गोपीराम. (2023). समकालीन हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श के सामाजिक सरोकार, शोध दिशा, अंक 4, पृ सं.-250–255.